1.1

अध्याय – 1

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की समग्र पृष्ठभूमि

1.1 कांग्रेस की स्थापना : 1885

1.2 नेहरू युग और कांग्रेस

1.3 शास्त्री युग और कांग्रेस

1.4 इंदिरा युग और कांग्रेस

1.5 राजीव युग और कांग्रेस

1.6 नरसिम्हाराव युग और कांग्रेस

कांग्रेस की स्थापना : 1885

कांग्रेस का इतिहास हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई का इतिहास है। सदियों से भारतीय राष्ट्र विदेशियों का गुलाम बना हुआ था उन दिनों वह जिस गुलामी में फंसा हुआ था, उसका आरंभ भारत वर्ष में एक व्यापारी कम्पनी के पर्दापण करने के साथ हुआ था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापारिक और राजनीतिक दौरा भारत में सौ वर्षों तक रहा। इसी बीच उसने भारत के बड़े–बड़े भागों पर अपना कब्जा कर लिया और व्यापारी की जगह वह एक राजशक्ति बन गई।

1833 से 1853 के दौरान पंजाब और सिंध जीत लिये गये। लार्ड डलहौजी की नीति ने कम्पनी का इलाका बहुत बड़ा दिया इसके अलावा आर्थिक शोषण भी जारी रहा, जिससे लोग कंगाल होते जा रहे थे यह बात लोगों को चुभ रही थी और वे मन ही मन रूष्ट हो रहे थे।[1] नतीजा यह हुआ कि 1857 में उन्होंने विदेशी शासन के जुऍ को फेंक देने का आखिरी सशस्त्र प्रयत्न किया। इससे यह प्रतीत होता है कि यह आन्दोलन 1757 के प्लासी युद्ध के बाद सौ वर्षों तक भारत में जो कुछ घटनाएं घटती रही, उनके परिणाम का घोतक था। यही नहीं बल्कि वह प्रत्येक देश और जाति के मानव हृदय की इस प्राकृतिक अभिलाषा को भी सूचित करता था कि हम अपने ही लोगों द्वारा शोषित हो, दूसरों द्वारा हर्गिज नहीं। इसमें संदेह नहीं कि आंदोलन बेकार गया, परंतु उसके साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी तिरोहित हो गई और भारत सरकार का शासन सूत्र सीधा ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथों में आ गया। इस अवसर पर महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा प्रकाशित की जिससे शांति और विश्वास का वातावरण पैदा हुआ और लोग यह समझ गये कि भारत में अंग्रेजी राज्य ईश्वर की एक देन है।

ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ में शासन सूत्र चले जाने के बाद भी भारत सरकार की गतिविधियां पहले की तरह जारी रहीं। 1833 के कानून के अनुसार भारतवासी उन तमाम जगहों पर नौकरी में लेने के योग्य करार दिये गये जिसके लिए वे उपयुक्त समझे जाते थे। 1853 में जब चार्टर विचाराधीन था तब पार्लियामेंट में यह बात खुले आम कही जाती थी कि 1833 के कानून ने यद्यपि भारतवासियों को नौकरियां देने का रास्ता खोल दिया है फिर भी उनको अभी तक वे जगहें नहीं दी गईं जो इस कानून के पहले उन्हें दी जा सकतीं थी। तब इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया था कि इसमें भारतीयों के रास्ते में बड़ी रूकावटें आएंगी क्योंकि उनके लिए इंग्लैंण्ड जाकर अंग्रेज छात्रों के साथ अंग्रेजी भाषा और साहित्य की परीक्षाओं में बाजी मार लेना असंभव होगा और वह भी उन नौकरियों के लिए जो आम तौर पर बहुत दुर्लभ थीं परंतु इस बाधा के रहते हुए भी कुछ भारतीय समुद्र पार गये और उन्होंने सफलता प्राप्त की इसी बीच लार्ड सेल्सबरी ने परीक्षा में बैठने की उम्र कम कर दी। इससे भारतीयों को लेने के देने पड़ गये,[2] क्योंकि उधर वह अंग्रेजों की सहायता से भारत और इंग्लैण्ड के साथ–साथ परीक्षा ली जाने की पुकार मचा रहे थे इधर लार्ड लिंटन ने देशी भाषा के समाचार पत्रों का मुँह बंद कर दिया था उन्होंने एक सशस्त्र कानून भी पास किया जिसके अनुसार न केवल भारतीयों के हथियार रखने के अधिकार छीन लिये गए थे, बल्कि भारतीयों और अंग्रेजों के बीच एक और जहरीला भेद–भाव पैदा कर दिया था। इन राजनीतिक चालों के साथ–साथ अकालों का दौर था। अनाज की कमी तो नहीं थी, परंतु उसे खरीदने के साधन बहुत कम थे। इन अकालों से देश में हजारों–लाखों लोग काल के ग्रास हो गये थे। इसके अलावा अफगान युद्ध हुआ जिसमें बहुत व्यय उठाना पड़ा। किसान भी पीड़ित थे। उनकी गहरी शिकायतें थीं, परंतु उनकी सुनवाई नहीं होती थी। सन् 1880 के आरंभ तक देश की दशा का वर्णन करते हुए सर लार्ड विलियम वेंडवर्न कहते थे – कि नौकरशाही ने केवल नई सुविधायें रोकने में ही अपनी तरफ से कोई कसर नहीं रखी बल्कि जब–जब मौका मिला पिछले

विशेषाधिकार भी छीन लिये गये। जैसे प्रेस को स्वतंत्र सभाएं करने का अधिकार, म्यूनिसिपल–स्वराज्य और विश्वविद्यालयों की स्वतंत्रता। वह लिखते है–"एक तो ये अंकुश और प्रतिगामी कानून दूसरे रूस–जैसा पुलिस का दमन, इसमें लार्ड लिंटन के समय में भारत में कोई क्रांतिकारी विस्फोट होने ही बाला था कि मि. ह्यूम को ठीक मौके पर सही बात सूझी और उन्होंने इस काम में हाथ डाला।"

मि. एलेन आक्ट्रेवियन ह्यूम के पास राजनीतिक अशांति का अकाष्ट प्रभाव था। उनके हाथ ऐसी रिपोर्टों की 7 जिल्दें लगी थीं, जिसमें विभिन्न जिलों के अंदर बगावत के भाव फैलने का वर्णन था। ये रिपोर्ट जिला, तहसील और सब डिवीजन के अनुसार तैयार की गई थीं और शहर, कस्बे और गांव भी उनमें शामिल थे। इसका यह अर्थ नहीं कि कोई सुसंगठित विद्रोह जल्दी होने वाला था बल्कि यह कि लोगों में निराशा छाई थी और वे कुछ न कुछ कर गुजरना चाहते थे।[3]

विभिन्न परिस्थितियों के रहते राष्ट्र के कई प्रांतों और नगरों में अनेक राजनीतिक संगठनों की नींव डल चुकी थी, फिर भी एक अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन स्थापित करने का अभाव खटकता रहा। इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य अंग्रेजी सरकार के सेवानिवृत्त अधिकारी सर ए.ओ. ह्यूम ने किया जो आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जनक कहलाए। उन्हें इस संगठन के निदेश डफरिन से प्राप्त हुए थे। इस संगठन की उत्पत्ति का उद्देश्य असंतुष्ट भारतीय बुद्धिजीवियों के सामने सुरक्षा कवच पेश करना था। सर ए.ओ. ह्यूम ने 1 मार्च 1883 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों को एक पत्र लिखकर निःस्वार्थ भाव से मातृ सेवा में जुट जाने की अपील की जिससे राष्ट्र का बौद्धिक, सामाजिक तथा राजनीतिक पुर्नजागरण हो सके एवं व्यवस्थित व अनुशासित सेना तैयार हो सके।[4]

इसके परिणामस्वरूप सन् 1884 में थियोसोफिकल कन्वेशन हुआ जिसमें देश के बौद्धिक एवं शिक्षित बुद्धिजीवियों ने राष्ट्रीय संस्था की स्थापना के विचार को मूर्त

रूप देने का निश्चिय किया। दिसम्बर 1884 में इण्डियन नेशनल यूनियन स्थापित की गई जिसके उल्लेखनीय प्रयासों से 28 दिसम्बर 1885 को मुंबई की गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज के विशाल भवन में एक कान्फ्रेंस का अयोजन हुआ। इसमें भारत के सभी क्षेत्रों से आये 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। एक लम्बे विचार विमर्श एवं वाद–विवाद के बाद इस संस्था का नाम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस Indian National Congress रखा गया इस प्रकार राजनीतिक संस्था का अस्तित्व भयंकर प्रयासों के चलते स्थापित हो पाया। कांग्रेस की स्थापना पर टिप्पणी करते हुए डॉ. ताराचन्द्र लिखते हैं – 'कांग्रेस का जन्म भारतीय राजनीति के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। इसने एक नवयुग के आगमन की घोषणा की। राष्ट्रीय एकता के युग की घोषणा जो ऊपर से लादी नहीं गई थी, बल्कि जनता के संकल्प की अभिव्यक्ति थी।' कांग्रेस उस नये समाज की प्रवक्ता थी जो प्लासी के बाद हुए 100 साल के दौरान आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप विकसित हुआ, यह उस प्रक्रिया की पूर्णता थी जिसमें सभी भारतीय वैज्ञानिक और सामूहिक रूप से संबंध था। प्रारंभ में अन्य संस्थाओं की तरह इसे जनता की उदासीनता और सरकार की नाराजगी के दौरों से गुजरना पड़ा। इन मंजिलों से गुजर कर ही वह ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति को चुनौती देने का एक शक्तिशाली औजार बन सकी।[5]

कांग्रेस की स्थापना के समय कई विदेशी भी इसके पक्षधर थे। जॉन ब्राइट और फॉसेट साहब, सर विलियम बेडरवर्न, रैम्जे मेकडॉनाल्ड, चार्ल्स ब्रैडला, ग्लैडस्टन, लॉर्ड नॉर्थबुक, लार्ड स्टैनले, जारलूबथ, हेनरी काटन इन्होंने पहले–पहल भारत के संयुक्त राज्य की कल्पना की।

भारतीय कर्णधार – दादा भाई नौरोजी, आनंद चार्लू, दीनशा, एदलजीवाचा, गोपाल कृष्ण गोखले, जी सुब्रमणिय्यम, बदरूद्दीन तैयबजी, व्योमेशचंद्र बनर्जी, लोकमान्य तिलक, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, फिरोजशाह मेहता, आनंद मोहन वसु, चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य, कालीचरण बनर्जी,

नबाव सैय्यद मुहम्मद बहादुर, दाजी आवाजी खरे, सी. शंकरन नायर, विपिनचंद्र पाल, मो. महजमल हक, महादेव गोविंद रानाडे, रमेशचंद्र दत्त, एन. सुब्बाराव, पन्तुलु, सच्चिदानंद सिंह, कांग्रेस के उक्त कर्णधारों के अतिरिक्त काशीनाथ तैलंग, मदनमोहन घोष, लाला मुरलीधर आदि ने भी अपनी अमर सेवाओं द्वारा कांग्रेस को गौरवान्वित किया।[6]

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन 1885 में व्योमेशचंद्र बनर्जी की अध्यक्षता में हुआ। व्योमेशचंद्र बनर्जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अत्यंत नम्र स्वर में कहा था– अधिकारी वर्ग के प्रति राजभक्ति का इजहार करती कांग्रेस सिर्फ इतनी मांग करती है कि सरकार के आधार को विस्तृत किया जाए और जनता को सरकार में उसका उचित और जायज हिस्सा दिया जाए।[7] भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में देश के विकास और भारत के जनमानस के उत्थान के प्रस्ताव पारित किए गये।

सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई और धीरे–धीरे यह संस्था राष्ट्रीय संस्था बन गई। कांग्रेस ने सभी जातियों, धर्म, सम्प्रदायों के लोगों का प्रतिनिधित्व किया एवं सभी जाति धर्म के लोग इस संस्था में शुरू से ही शामिल थे, जिससे यह संस्था किसी धर्म विशेष व सम्प्रदाय की संस्था न थी वरन् सभी धर्मों के उदारवादी राष्ट्रीय नेताओं ने इस महान संस्था की जिम्मेदारी अपने हाथों में ली।[8] 1885 के प्रारंभिक वर्षों से 20 वर्षों तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति उदार रही। इन उदारवादी नेताओं में दादा भाई नौरोजी, महादेव गोविंद रानाडे, गोपालकृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता, व्योमेश चंद्र बनर्जी आदि थे।[9]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में पूर्ण रूप से उदारवादी नेताओं के प्रभाव में थी जिनका अंग्रेजों की न्यायप्रियता तथा वैधानिक आन्दोलनों में दृढ़ विश्वास था। उदारवादियों का मुख्य उद्देश्य भारतीय प्रशासन में क्रमिक सुधारों के लिए सरकार के समक्ष मांगे प्रस्तुत करना और संवैधानिक साधनों

से उनकी पूर्ति के लिए प्रयत्न करना था। लेकिन 1885 ई से 1905 ई. के बीच के काल में भारत और विदेशों में कुछ ऐसी घटनाएं घटित हुई, जिसमें कांग्रेस की युवापीढ़ी में एक नया जोश उत्पन्न हुआ। अब उनका अंग्रेजों की न्यायप्रियता से विश्वास उठ गया और वे वैधानिक साधनों एवं कांग्रेस की नरम नीति से ऊब गये और उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि स्वराज्य मांगने से नहीं बल्कि संघर्ष करने से ही प्राप्त होगा। संघर्ष द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने के मार्ग को उग्रवादी नेताओं ने 1906 से 1919 तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया।[10]

कांग्रेस पार्टी में स्पष्टतः विभाजन हो गया एक उदारवादी दल कहलाया और दूसरा उग्रवादी सन् 1905 के पश्चात् कांग्रेस पार्टी दो धड़ों में बंट गई एक दल का नेतृत्व गोखले, दादाभाई नौरोजी और फिरोजशाह मेहता ने किया और उग्रवादी दल का नेतृत्व बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय आदि ने किया।

बाल गंगाधर तिलक विदेशी नौकरशाही के कट्टर शत्रु थे। वे कहा करते थे– कि अच्छी विदेशी सरकार की अपेक्षाकृत हीन स्वदेशी शासन श्रेष्ठ है स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगाा। तिलक उदारवादियों की भांति ब्रिटिश शासन को भारत के सहयोगी नहीं मानते थे और न ही राजनीतिक शिक्षावृत्ति की नीति में उनका विश्वास था। तिलक का मानना था कि भारत की समस्त कठिनाइयों का मूल कारण ब्रिटिश सरकार है।

पंजाब के महान शेर लाला लाजपतराय उग्रता और शांति के समन्वय सागर के रूप में थे। तीसरे प्रमुख विपिन चन्द्र पाल थे। विपिन चन्द्रपाल 1887 ई. में कांग्रेस पार्टी में सम्मलित हुये लेकिन ज्यादा समय तक इनकी विचारधारा उदारवादियों से न मिल सकी क्योंकि इनकी विचार धारा तिलक और लाला लाजपतराय के समान थी।

1.2

नेहरू युग और कांग्रेस

पंडित जवाहरलाल नेहरू सन् 1912 में कांग्रेस की ओर आकर्षित हुए और पिता मोतीलाल के विरोध के बाद भी कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता बने रहे। वह देश सेवा में इस तरह जुट गये कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा उन पर किये जा रहे अत्याचारों की परवाह न की और कांग्रेस के सक्रिय सदस्य बन गये उनकी मेहनत रंग लाई और एक ऐसा समय आया जब वह कांग्रेस पार्टी के ही मुखिया बन गये।

6 सितम्बर, 1921 को प्रिंस ऑफ बेल्स के आगमन का विरोध हुआ जिसमें जवाहरलाल को गिरफ्तार कर दण्ड दिया गया। 29 नवम्बर, 1927 को लखनऊ में साइमन कमीशन का विरोध करने के कारण पुलिस की लाठियों से घायल हुए। 24 दिसम्बर, 1929 को लाहौर अधिवेशन के सभापति चुने गये।[11]

9 मई, 1946 को चौथी बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। और 17 अगस्त, 1946 को वायसराय की अंतरिम सरकार बनाने का निमंत्रण स्वीकार किया। 23 मार्च, 1947 को ऐशियाई सम्मेलन (दिल्ली) का उद्घाटन भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने किया।[12]

14 अगस्त, 1947 की रात्रि बारह बजे संसद भवन में लार्ड माउण्टबेटन ने देश की बागडोर जवाहरलाल नेहरू को सौंप दी। यूनियन जैक नीचे उतार दिया गया और राष्ट्रीय तिरंगा झण्डा संसद भवन पर फहराने लगा। अतः 15 अगस्त, 1947 को कांग्रेस पार्टी के अथक प्रयासों से यह आंदोलन सफल रहा और भारत को आजादी प्राप्त हुई।[13] इस युग में पं. नेहरू ने भारत में लोकतंत्र स्थापित करने का तीव्र गति से कार्य किया ताकि लोकतंत्र स्थापित हो सके।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने देश की राष्ट्रीय आय बढ़ाने के लिए (1951–56) में प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू कि जिसमें देश की राष्ट्रीय आय में 18 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। (1956–61) में दूसरी पंचवर्षीय योजना को लागू करने में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने विशेष योगदान दिया। इसमें उद्योगों की प्रगति, रोजगार के अवसरों को बढ़ाना आदि पर बल दिया गया। (1961–66) तीसरी पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय 30 प्रतिशत तथा प्रतिव्यक्ति आय में 17 प्रतिशत वृद्धि के लक्ष्य रखे गये। इस योजना को 45 क्षेत्रों में ही लागू किया गया जिसमें एक तिहाई क्षेत्रों में प्रगति की।[14]

1.3

शास्त्री युग और कांग्रेस

जनवरी 1929 में लालबहादुर शास्त्री इलाहाबाद में पुरूषोत्तम दास टंडन के साथ कांग्रेस में काम करने लगे। उस समय के कांग्रेसी नेता होने के साथ ही इलाहाबाद जिला कांग्रेस कमेटी के भी अध्यक्ष थे। इसी दौरान लालबहादुर शास्त्री का परिचय नेहरू परिवार से हुआ। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का काम उस समय इलाहाबाद के स्वराज भवन से ही संचालित होता था। यह जगह कांग्रेस पार्टी को नेहरू परिवार की तरफ से दान में मिली थीं जब पंडित नेहरू कांग्रेस अध्यक्ष बने थे तब लालबहादुर शास्त्री उनके और करीब आ गये। पाश्चात्य विचार और संस्कृति में सरोबार पंडित नेहरू के स्वदेशी तथा भारतीय मूल्यों के प्रति निष्ठावान लालबहादुर शास्त्री नेहरू के प्रिय बन गये। 1929 के लाहौर अधिवेशन की अध्यक्षता नेहरू जी ने की जिसमें लाल बहादुर शास्त्री ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया था।

सन् 1946 से उन्होंने महत्वपूर्ण पदों पर काम करना शुरू किया। पहले उत्तरप्रदेश के संसदीय सचिव बने फिर राज्य के गृह मंत्री तथा परिवहन मंत्री बने। 1951 में पंडित नेहरू ने उन्हें अपने पास दिल्ली बुला लिया। 1951 को नेहरू जी ने उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का महासचिव बनाया एवं 1951–52 के प्रथम आम चुनावों में कांग्रेस का प्रचारक भी नियुक्त किया। 1952 में कांग्रेस की सरकार बनी। प्रधानमंत्री नेहरू ने उन्हें अपने मंत्रिमण्डल में पहले रेल और संचार मंत्री बनाया फिर संचार और सूचना–प्रसारण मंत्री, उसके बाद वाणिज्य और उद्योग मंत्री फिर गृह मंत्री एवं पंडित नेहरू की मृत्यु के बाद 1964 में प्रधानमंत्री बने। 1951–1956 और 1963 में तीन बार उन्होंने केन्द्रीय मंत्री पद से इस्तीफा दिया। हर बार उनकी आमदनी में कमी हुई ऐसे समय में उनके परिवार ने अपने भोजन से मँहगी सब्जियों को हटा दिया। कई बार उन्हें जिन्दगी से संघर्ष करना पड़ा लेकिन पवित्र और सच्चा जीवन जीने के लिये यह कीमत उन्होंने खुशी–खुशी चुकायी। 1966 में जब उनकी मृत्यु हुई तब न अपने पीछे उन्होंने बच्चों के रहने के लिये मकान छोड़ा न जमीन जायजाद, न ही कोई धन संपत्ति, बल्कि उन पर सरकार

का थोड़ा सा कर्जा ही था जो उन्होंने प्रधानमंत्रित्व कार्यकाल में कार खरीदने के लिये सरकार से लिया था।

कांग्रेस पार्टी के महासचिव की हैसियत से 1952 में लालबहादुर शास्त्री की सर्वाधिक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी थी नये संविधान के अन्तर्गत पहले गुप्त तथा व्यस्क मतदान के आधार पर आम चुनाव कराना, उन्होंने अपनी इसी जिम्मेदारी को बखूबी निभाया। चुनावों में कांग्रेस को भारी जीत मिली जिसका श्रेय लाल बहादुर शास्त्री को भी गया। 1957 में भारत के दूसरे राजनैतिक चुनावों के समय नेहरू जी ने लाल बहादुर शास्त्री को कांग्रेस के चुनाव–प्रचार विभाग का प्रमुख संगठक बनाया था। 1961 में नेहरू ने गृह मंत्री बनाया। गृह मंत्री बनने के बाद शास्त्री के सामने असम का भाषा विवाद था जो गंभीर रूप धारण कर चुका था। 1959 में वहाँ असमिया भाषा को राज्य की सरकारी भाषा घोषित करने की मांग हुई जिसके परिणामस्वरूप शीघ्र ही बंगाली भाषा के खिलाफ आंदोलन छिड़ गया। 1960 में राज्य में राजभाषा अधिनियम लागू हुआ और असमिया को राजभाषा का दर्जा दिया गया। तब फिर बंगाली भाषी चिढ़ गये। 31 मई, 1961 को लाल बहादुर शास्त्री असम गये। अधिकारियों और दोनों गुटों के प्रतिनिधियों से बातचीत की। सोच–विचार के बाद लालबहादुर शास्त्री ने जो हल निकाला वह "शास्त्री फॉर्मूले" के नाम से जाना गया। इसके बाद उनके सामने एक और समस्या ने उग्र रूप धारण कर लिया जब मास्टर तारा सिंह ने अगस्त, 1961 में अलग पंजाबी सूबे की मांग की। इस समस्या को शास्त्री ने न्याय संगत ढंग से निपटाया एवं अनशन भी तोड़ा।[15]

पैगम्बर मुहम्मद का पवित्र बाल जो श्रीनगर के हजरतबल मकबरे में 300 साल से सुरक्षित रखा गया था 20 दिसम्बर, 1963 को वहाँ से गायब हो गया जिससे हिन्दू मुस्लिम और सिक्खों के बीच मनमुटाव हो गया। पाकिस्तान ने इसमें घी डालने का काम किया। पवित्र बाल की चोरी से नेहरू सरकार की नींद उड़ गयी। यह बाल 8 दिन बाद 4 जनवरी, 1964 को उसी मकबरे में आश्चर्यजनक ढंग से वापिस आ गया परंतु अभी समस्या हल नहीं हुई थी। लोगों ने कहा यह नकली बाल है। इस विस्फोटक परिस्थिति में नेहरू ने फिर लालबहादुर शास्त्री को याद किया। 30 जनवरी, 1964 को शास्त्री श्रीनगर गये। लालबहादुर शास्त्री अपने निरीक्षण और चर्चाओं के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बाल असली है। 3 फरवरी, 1964 को उन्होंने पवित्र बाल के दर्शन किये। इस तरह लालबहादुर शास्त्री कांग्रेस के सफल निशानेबाज बन गये।

25 मई तथा 15 जून, 1965 को पाकिस्तान ने भारतीय सीमा में हमले की कोशिश की परन्तु वह कामयाब नहीं हो सका परन्तु सितम्बर, 1965 को पाकिस्तान ने अचानक भारतीय सीमाओं पर हमला कर दिया। 15 अगस्त, 1965 के बाद युद्ध विराम रेखा के उल्लंघन की घटनाएं काफी बढ़ गयी। जबाब में भारतीय सेना ने 28 अगस्त, 1965 के दिन युद्ध विराम रेखा को लांघकर पाकिस्तानी सेनाओं को खदेड़ना शुरू कर दिया और 30 अगस्त तक भारतीय सेना ने घुसपैठियों को खदेड़कर 8600 फुट ऊँचाई पर हाजी पीर दर्रे पर अपना कब्जा कर लिया।

20 सितम्बर, 1965 को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में युद्ध विराम की मांग करने वाला प्रस्ताव पारित हुआ। पाकिस्तान ने इस युद्ध में घुटने टेक दिये और हार स्वीकार कर ली। भारतीय फौजों ने पाकिस्तानी सेना को काफी पीछे खदेड़ दिया। 23 सितम्बर, 1965 को युद्ध समाप्त हो गया इस युद्ध में भारत की जीत हुई। लालबहादुर शास्त्री की पूरे देश ने जय–जयकार की इस जीत ने 1962 से युद्ध की घटनाओं को भुला दिया।

18 सितम्बर, 1965 को सोवियत संघ की ओर से कोसीगन ने प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री को एक पत्र लिखा उसमें उन्होंने लिखा था कि– भारत तथा पाकिस्तान के बीच अच्छे संबंध हों इसके लिए सोवियत संघ मध्यस्थता की इच्छा जाहिर करता है। प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने 2 दिसम्बर, 1965 को मंत्रिमंडल की बैठक में इस प्रस्ताव पर चर्चा की। ताशकंद में मुलाकात के इस प्रस्ताव को उन्होंने स्वीकार कर लिया। सोवियत संघ के ताशकंद शहर में पाकिस्तान के अयूब खान और लाल बहादुर शास्त्री की मुलाकात निश्चित की गई। 3 जनवरी, 1966 को प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री दिल्ली के पालम हवाई अड्डे से ताशकंद के लिये रवाना हुये।

4 जनवरी, 1966 को ताशकंद में तीनों नेता कोसीगन, शास्त्री और अयूब खान मिले। दो–तीन दिन तक इस समस्या पर कोई हल न निकल सका परन्तु 10 जनवरी, 1966 को ताशकंद में भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध विराम को लेकर ऐतिहासिक समझौता हुआ।

इस तरह युद्ध विराम को लेकर 1966 में भारत–पाकिस्तान के ताशकंद में समझौता हुआ और 10 जनवरी, 1966 को ही रात्रि में ताशकंद में लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु हो गयी। लाल बहादुर शास्त्री ने कांग्रेस और फिर देश के प्रधानमंत्री पद की गरिमा को बढ़ाया और भारत की छबि को विश्व स्तर पर फिर से चमकाया।[16]

1.4

इंदिरा युग और कांग्रेस

सन् 1969 में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी का विघटन कांग्रेस में हुए कुछ संकटों के परिणाम स्वरूप हुआ। सन् 1969 ई. के प्रारंभ में कांग्रेस संसदीय दल के नेता के पद पर जैसे ही श्रीमती इंदिरा गाँधी विराजमान हुई उन पर कुछ नेताओं ने दबाव बनाने की पूरी कोशिश की जिससे श्रीमती इंदिरा गाँधी को महसूस होने लगा कि वे अपने कार्य के प्रति स्वतंत्र नहीं हैं एवं सिंडीकेट कहलाने वाले दल के नेताओं का उन पर नियंत्रण है जिससे श्रीमती इंदिरा गॉधी ने अपने अधिकारों का पूर्ण उपयोग एवं स्वतंत्र होकर कार्य करने का प्रण लिया। कांग्रेस अध्यक्ष श्री कामराज चाहते थे कि प्रधानमंत्री उनके नियंत्रण में कार्य करें जिससे दोनों में मतभेद उत्पन्न होने लगे।

कांग्रेस के एक गुट का अधिवेशन 20 से 22 दिसम्बर, 1969 को बंबई में श्री निजलिंगप्पा द्वारा आयोजित किया गया और कांग्रेस के दूसरे गुट का अधिवेशन कहा जाये तो नई कांग्रेस का अधिवेशन श्री जगजीवनराम की अध्यक्षता में 27 से 29 दिसम्बर, 1969 को हुआ। इस अधिवेशन में देश की आर्थिक व राजनैतिक स्थितियों पर विचार किया गया नई कांग्रेस के बंबई अधिवेशन के माध्यम से कांग्रेस के 84 वर्ष पुराने इतिहास का युग समाप्त हो गया एवं कांग्रेस विधिवत रूप से दो गुटों के विभाजित हो गई तथा कांग्रेस दल का विभाजन हो गया कांग्रेस अल्पमत में आ गई और कांग्रेस (ओ) या कांग्रेस संगठन मान्यता प्राप्त विपक्ष बना। नवम्बर, 1969 में कांग्रेस विभाजन के बाद श्रीमती इंदिरा गाँधी ने सत्ता पर अपनी पकड़ को गहरी करने के प्रयास प्रारंभ कर दिये और इस दिशा में एक प्रमुख प्रयत्न जून, 1970 में केबिनेट के पुर्नगठन के रूप में किया गया। श्रीमती इंदिरा गाँधी के अनुसार वह कार्य केबीनेट को अधिक सुसंबद्ध रूप देने के लिये किया गया था।[17]

चौदह प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण :

19 जुलाई, 1969 को वित्तमंत्री श्री मोरारजी देसाई के इस्तीफे को स्वीकार किए जाने के कुछ ही घंटों पश्चात् कार्यवाहक राष्ट्रपति श्री पी.वी. गिरी के पचास करोड़ से अधिक जमा राशि वाले प्रमुख भारतीय बैंकों के राष्ट्रीयकरण की घोषणा कर दी।

श्रीमती इंदिरा गाँधी की शक्तियों में वृद्धि :

सन 1971 ई. के पांचवे लोकसभा मध्यावधि चुनाव में श्रीमती इंदिरा गाँधी व उनके दल कांग्रेस को दो तिहाई से भी अधिक मत प्राप्त हुए थे अतः सन् 1969 के कांग्रेस पार्टी के विभाजन के पश्चात् शनैः–शनैः श्रीमती इंदिरा गाँधी राष्ट्र की एक शक्तिशाली नेता बन गई थीं साथ ही उन्होंने अपने विरोधियों का जिस अंदाज में सामना किया उससे उनकी राजनीतिक कुशलता व समझदारी का देश की जनता ने स्वागत किया और स्पष्ट किया कि हमारी नेता सिर्फ इंदिरा गाँधी ही होगी।

1971 ई. के मध्यावधि चुनाव में देश की जनता के लिए इंदिरा गाँधी का नारा था गरीबी हटाओ।

सन् 1971 से 1975 के युग में कांग्रेस शासन ने कई उपलब्धियां हासिल कीं जिनमें – शिमला समझौता, तस्करी पर प्रतिबंध, भारत सोवियत संधि, भारत का प्रथम अणु परीक्षण, आर्यभट्ट का अंतरिक्ष में भेजना, भारत चीन संबंधों में सुधार, शरणार्थियों की समस्या, आंतरिक उपद्रवों से देश की सुरक्षा महत्वपूर्ण उपलब्धियां रहीं।[18]

कांग्रेस पार्टी का पुनः सत्तारूढ़ होना :

सन 1977 ई. के लोकसभा चुनाव के पश्चात श्रीमती गाँधी ने बहुत कुछ सीखा और अपने परायों में अंतर स्पष्ट किया। उन्होंने 1980 में राजनैतिक वापसी से एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया जो बेमिसाल था एक बार फिर भारत 'इंदिरा भारत है' के नारों से देश गूंज उठा।[19]

31 अक्टूबर, 1984 की घटना इतिहास बनकर रह गई जब अलगाववादी ताकतों द्वारा श्रीमती इंदिरा गाँधी की हत्या कर दी गई।

1.5

राजीव युग और कांग्रेस

स्वतंत्र भारत के इतिहास में जो रक्तरंजित और कालिमा युक्त पृष्ठ है उनमें से तीन घटनाओं ने भारत की राजनीति को कलंकित किया है। जिसमें राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, श्रीमती इंदिरा गाँधी और आधुनिक भारत के निर्माता राजीव गाँधी की हत्या कर दी गई। 21 मई, 1991 का रक्तरंजित दिन आधुनिक भारत के इतिहास के लिए एक चुनौती बनकर आया था। देश के लोकतंत्र, अखण्डता, धर्मनिरपेक्षता, स्थिरता और एक आधुनिक भारत के निर्माण की परिकल्पना लिए वे हिंसा और आतंकवाद की बलि चढ़ गये।

सन् 1980 में राजीव गाँधी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामंत्री चुने गये और फिर 1981 में अमेठी (उ.प्र.) से सांसद चुने गये। इंदिरा सरकार और कांग्रेस पार्टी के प्रमुख निर्णयों में भी वह भूमिका अदा करने लगे। 31 अक्टूबर, 1984 को इंदिरा गाँधी की उनके अंगरक्षकों द्वारा हत्या कर दी तो कांग्रेस कमेटी ने प्रस्ताव पारित कर राजीव गॉधी का नाम प्रधानमंत्री पद के लिये प्रस्तावित किया, तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने उन्हें भारत के प्रधानमंत्री की शपथ दिलाई। दिसम्बर 1984 को लोकसभा चुनाव हुए जिसमें कांग्रेस को तीन चौथाई से अधिक बहुमत प्राप्त हुआ।

विश्व स्तर पर राजीव गाँधी सरकार की सराहना हुई, विरोध भी हुआ परंतु देश की अर्थ व्यवस्था दृढ़ हुई, औद्योगिक प्रगति हुई एवं संचार क्रांति का युग शुरू हुआ, किन्तु बोफोर्स और अन्य प्रकरणों से राजीव गाँधी की छवि पर असर भी पड़ा, जिससे वह 1989 में सत्ता खो बैठे। कांग्रेस विपक्ष में आ गई। 1989 व 1990 में दो बार सरकारें बनी और बिगड़ी।

29 नवम्बर, 1989 को राजीव गाँधी ने प्रधानमंत्री पद छोड़कर लोकसभा में विपक्षी नेता का पद संभाला।

1991 को राष्ट्रपति ने नौंवी लोकसभा चुनाव की घोषणा कर दी। राजीव गॉधी ने कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में पूरे देश का चुनावी दौरा किया, साथ में उनकी पत्नी सोनिया गॉधी ने भी उनका साथ निभाया इस बार देश में लहर कांग्रेस के पक्ष में चल रही थी और राजीव गॉधी को उम्मीद भी थी कि इस बार कांग्रेस की सरकार बनेगी उन्होंने दिन–रात पूरे देश का दौरा किया और जनता से रू–बरू होकर पिछली गलतियां न दोहराने का वादा भी किया परंतु कालचक्र को कुछ और ही मंजूर था। एक चुनावी सभा के दौरान मद्रास से करीब 40 कि.मी. दूर श्रीपैरूम्बदूर में उनकी 21 मई, 1991 की रात मानव बम द्वारा हत्या कर दी गई। यह ज्योतिपुरूष हमेशा के लिए शांत हो गया। पूरा देश रो पड़ा और पूरे विश्व ने इस नेता के प्रति अपनी संवेदना प्रकट की।

1.6

नरसिम्हाराव युग और कांग्रेस

1991 में 511 स्थानों में से 504 स्थानों का परिणाम घोषित हुए। कांग्रेस को 224 स्थान मिले कांग्रेस के सहयोगी दलों को 11 स्थान प्राप्त हुए इस प्रकार कुल मिलाकर कांग्रेस के पक्ष में 240 स्थान प्राप्त हुए। जबकि भाजपा को 110 तथा उसके समर्थकों को 4 स्थान ही मिल पाये। राष्ट्रपति ने कांग्रेस को सरकार बनाने का आमंत्रण दिया।

1991 में श्री पामुलपर्ति वेंकट नरसिंह राव ने भारत के नौवे प्रधान मंत्री की शपथ ली, उन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष के साथ–साथ प्रधान मंत्री पद पर रहकर देश के विकास को गति प्रदान की।[20]

नरसिंह राव ने जब प्रधान मंत्री पद संभाला उस समय देश अत्यंत कठोर समस्याओं से जूझ रहा था क्योंकि जनता सरकार ने अपने शासन काल में देश के विकास पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया था। एक तरफ पंजाब, कश्मीर व असम राज्यों में हिंसा चरम सीमा पर थी वहीं दूसरी ओर देश में आर्थिक संकट आन पड़ा था। उन्होंने सबसे पहले आर्थिक संकट सुलझाने का निर्णय लिया। जवाहर लाल नेहरू के बाद नरसिंह राव ने ही ऐसा साहसिक कदम उठाया। उस समय विदेशी मुद्रा दो सप्ताह बाद ही समाप्त होने की स्थिति में थी। 2000 रूपये मूल्य की विदेशी मुद्रा ही भारत सरकार के पास थी। रूपये की दर आवश्यकता से अधिक थी जिससे विदेशी बाजार की होड़ में भारत पिछड़ रहा था। प्रवासी भारतीय अपनी जमा हुई राशि से हर हफ्ते तीन सौ करोड़ रूपये के हिसाब से वापस ले रहे थे। ऐसी स्थिति में विदेशी बैंक धन देने को तैयार नहीं थे। इस संकट का सामना करने के लिए रूपये की दर दो बार कम कर दी गईं जिससे तीन हजार करोड़ की बचत

हुई और प्रवासी भारतीयों ने अपना धन वापस लेना स्थगित कर दिया। विश्व में भारत की साख की रक्षा फिर से कायम हुई।

आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और आधुनिकीकरण की नीतियां प्रधान मंत्री ने लागू की। औद्योगिक नीतियों में भी परिवर्तन किया गया। लघु उद्योगों की वृद्धि के लिए कई सुविधाएं दी गयीं एवं विश्व में भारत की साख बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयास किये गये।

1998 में श्रीमती सोनिया गॉधी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष नियुक्त हुईं इस समय तक कांग्रेस दल निराशा के युग में जी रहा था सोनिया गॉधी ने इस अवस्था में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कमान संभाली।

इस प्रकार जिस भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की 28 दिसम्बर, 1885 को ए.ओ. ह्यूम द्वारा एक 'सेफ्टी बाल्व' के रूप में स्थापना की गई वह राजनीतिक दल अपनी स्थापना के पश्चात् भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व करता हुआ अंततः देश को स्वतंत्र कराने में सफल रहा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विभिन्न अध्यक्षों ने सदैव ही दल को देश की विकास यात्रा में नेतृत्व प्रदान किया। भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अपने पड़ोसियों द्वारा थोपे गये युद्धों को झेलना पड़ा जिसमें सरकार का नेतृत्व और जनमानस का हौसला भारत की शान को बढ़ाता ही चला गया। कांग्रेस ने इस युग में जिन प्रधान मंत्रियों एवं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्षों ने नेतृत्व प्रदान किया उससे भारत विश्व में अपना विशिष्ट स्थान बनाने में सफल रहा।

1998 में श्रीमती सोनिया गॉधी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष चुनीं गयीं। उन्होंने अपनी विकास यात्रा यहीं से प्रारंभ की। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी का 1998 में 81वाँ सत्र 2001 में बेंगलूर में तथा 82वाँ अधिवेशन हैदराबाद में जनवरी, 2006 में कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गाँधी के नेतृत्व में सम्पन्न हुये।